भारतीय भाषाएँ व संविधान

रमाकान्त अग्निहोत्री

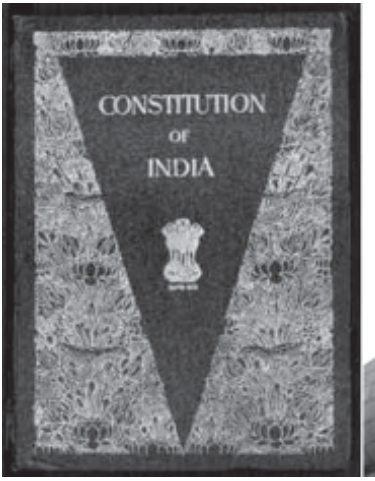

जब हिन्दी व अँग्रेज़ी का फैसला हो गया था तो फिर आठवीं सूची बनाने की क्या आवश्यकता थी? दो प्रश्न संविधान सभा की बहसों में निरन्तर टाले गए। एक भाषा का और दूसरा संसद का सदस्य होने के लिए आवश्यक योग्यता का। दोनों आज तक हमारे गले में लटके हैं। संसद में कई ऐसे लोग बैठे हैं जिन पर संगीन जुर्म के मुकदमे चल रहे हैं। अनुच्छेद 84 के मुताबिक संसद का सदस्य होने के लिए दो ही बातें आवश्यक हैं: भारत का नागरिक होना और लोक सभा के लिए उम्र 30 वर्ष व राज्य सभा के लिए 25 वर्ष होना। इतने अहम मुद्दे पर केवल इतनी ही बात कहना शायद उचित नहीं था। आज की परिस्थिति देखकर तो यही लगता है। लेकिन उस समय की संविधान सभा को देखकर लगता था कि संसद सदस्यों के कद शायद सदा ही इतने ऊँचे होंगे। आज लगता है कि उन उम्मीदों का क्या हुआ।

राष्ट्रभाषा/ राजभाषा के दावेदार

संविधान सभा की बहसों में भाषा

को लेकर मुख्य मुद्दा था कि चुनिन्दा भाषा राष्ट्रीय भाषा होगी या राजभाषा। अन्ततः यह निर्णय हो गया था कि देवनागरी में लिखी जाने वाली हिन्दी ही संघ की राजभाषा होगी और 15 साल तक अँग्रेज़ी उन सब कामों के लिए चलती रहेगी जिनके लिए उसका प्रयोग उस समय हो रहा था। हिन्दी, उर्दू, हिन्दुस्तानी को लेकर बहुत बहस हुई। लोगों को समझ नहीं आ रहा था कि हिन्दुस्तानी की जगह अचानक हिन्दी ने कैसे ले ली और वह भी संस्कृतनिष्ठ हिन्दी ने। संविधान सभा की बहसों में हिन्दीवाले इस बात पर आमदा थे कि संस्कृतनिष्ठ हिन्दी ही राष्ट्रभाषा बने। जब अन्य राज्यों के लोग इस बात के लिए नहीं माने तो राजभाषा पर सहमति बनी। कई लोगों का तो यह भी कहना था कि संस्कृत ही भारत की राष्ट्रभाषा होनी चाहिए।

पण्डित लक्ष्मीकांत मैत्रा का कहना था कि संस्कृत ही राष्ट्रभाषा बनाने योग्य है। उनके अनुसार संस्कृत संसार की सभी भाषाओं की जननी है और यह बात विश्व के महान विद्वान भी मानते हैं। अगर आज भारत को अपना भाग्य बनाने का अवसर मिला है तो उसे निश्चित रूप से संस्कृत को ही अपनाना चाहिए। उन्होंने पूछा कि क्या भारत को आज संस्कृत को मान्यता देने में शर्म महसूस हो रही है। उनका मानना था कि बंगाली, मराठी, गुजराती, तमिल, तेलुगु, मलयालम जैसी अनेक भाषाएँ महान हैं पर वे अलग-अलग राज्यों की भाषाएँ हैं और उनका उद्गम संस्कृत से ही हुआ है। संस्कृत हमारे राष्ट्र की भाषा है। तेलुगु के समर्थकों का कहना था कि केवल तेलुगु में ही विज्ञान की भाषा विकसित हुई है, इसलिए तेलुगु को ही आधुनिक भारत की राष्ट्रभाषा बनाना चाहिए। इसी प्रकार तमिल व बंगाली के पक्ष में बोलने वाले भी कई लोग थे। यह समझ नहीं थी शायद कि भारत में चार मुख्य भाषा परिवार हैं और तीन का संस्कृत से कोई लेना-देना नहीं। विशेषकर द्रविड़ परिवार की तमिल भाषा व संस्कृति उतनी ही प्राचीन है जितनी संस्कृत।

खैर, जब 15 साल होने को आए तो दक्षिण में बहुत दंगे हुए। वास्तव में, जब-जब देश में हिन्दी थोपने के प्रयास हुए तब-तब हिन्दी का भयंकर विरोध हुआ है, विशेषकर तमिलनाडु में। 1937 में सी. राजगोपालाचार्य ने तमिलनाडु के स्कूलों में हिन्दी पढ़ाने का प्रस्ताव रखा। 1937 से लेकर 1940 तक हिन्दी के खिलाफ तरह-तरह की सभाएँ व सम्मलेन हुए और लोगों ने व्रत रखे और धरने दिए। अँग्रेज़ों का राज था। बहुत सख्ती हुई। कई लोग पकड़े गए और 70 लोगों की मौत हुई। उसी समय से द्रविड़ राजनैतिक पार्टी की भी शुरुआत हुई। जब नेहरु ने इस प्रकार का प्रयास किया तो उन्हें 1963 का राजकीय भाषा अधिनियम संसद में पारित करवाना पड़ा जिसका संशोधित अधिनियम

1967 में पारित हुआ। इसके अन्तर्गत हिन्दी व अँग्रेज़ी भारत की राजभाषाएँ होंगी। तमिलनाडु के लोग कभी तैयार नहीं थे कि अँग्रेज़ी को संविधान से हटाकर हिन्दी को सारे देश पर थोप दिया जाए। भारत जैसे बहुभाषी देश के लिए यह बिलकुल ज़रूरी नहीं कि 'एक देश एक भाषा' का नारा बुलन्द किया जाए। आज भी हिन्दी को थोपने के प्रयास होते रहते हैं। और हिन्दी को लेकर यदाकदा झगड़े होते ही रहते हैं। कई बार हिन्दी को दक्षिण भारत के राज्यों पर थोपने की बात चली। इस सबका परिणाम यह हुआ कि तमिल लोगों ने अपनी भाषागत पहचान को और सुदृढ़ बनाने के लिए संस्कृत के शब्दों के द्रविड़ पर्याय चुन लिए और आधुनिक विज्ञान के लिए भी तमिल शब्दावली बनाई। टी.टी. कृष्णामचारी ने तो कहा ही था कि यह हमारे उत्तर प्रदेश के दोस्तों पर निर्भर करता है कि वे पूर्ण भारत चाहते हैं या केवल हिन्दी भारत।

आठवीं सूची

आठवीं सूची बनाने का यही उद्देश्य था कि भारत की सभी मुख्य भाषाओं को भारत के संविधान में जगह मिल जाए। बहुत-से लोग जो नाराज़ थे, उनकी नाराज़गी भी खत्म हो जाएगी। देखने की बात है कि इस सूची को केवल 'भाषाएँ' कहा गया न कि भारतीय भाषाएँ या क्षेत्रीय भाषाएँ आदि। इसका अर्थ यह हुआ कि यह एक खुली सूची थी जिसमें कोई भी भाषा किसी भी समय जोड़ी जा सकती थी। इसलिए ऑस्टिन (1966/ 2000) ने इसे 'stroke of raw genius' कहा है। तमिल, बांग्ला व उर्दू वालों की सभी शिकायतें भी खत्म हो गईं और हिन्दी को राजभाषा बनाकर हिन्दीवालों को भी काफी तसल्ली हुई। फिर भी हिन्दी को निरन्तर समृद्ध करने व फैलाने के लिए संविधान में कई अनुच्छेद शामिल किए गए।

आठवीं सूची में आ जाने से किसी भाषा को कोई खास लाभ नहीं होता। हाँ, इतना ज़रूर है कि एक पहचान बन जाती है और एक नए स्वाभिमान का दायरा बन जाता है। संविधान के अनुसार तो केवल यही प्रावधान है कि आठवीं सूची में सम्मिलित हर भाषा का एक व्यक्ति उस भाषा आयोग में शामिल होगा जो भाषाओं के मसलों के बारे में बनेगा। यह भी प्रावधान रखा गया था कि हिन्दी अपने आधुनिकीकरण व विकास में इस सूची की भाषाओं से मदद लेगी। अच्छी बात यह हुई कि बहुभाषिता एवं भाषागत पहचान में यह सूची एक नया पुल बन गई। शासन को भी इसमें नई भाषाएँ जोड़ने में कोई विशेष कठिनाई नहीं होनी चाहिए, बेशक समय के चलते यह एक भयावह राजनैतिक मामला बन गया है और आज की तारीख में सरकार के पास इस सूची में शामिल होने के लिए कई भाषाओं के प्रस्ताव रखे हैं। इसमें कोई हैरानी नहीं होनी चाहिए कि यह सूची

14 से शुरू होकर आज 22 तक पहुँच गई है। जिन 14 भाषाओं को आठवीं सूची में 1950 में रखा गया था, वे थीं: असमी, बांग्ला, गुजराती, हिन्दी, कन्नड़, कश्मीरी, मलयालम, मराठी, उड़िया, पंजाबी, संस्कृत, तमिल, तेलुगु, उर्दू। सबसे पहले इस सूची में सिन्धी को जोड़ा गया। सिन्धी का कोई अपना विशेष क्षेत्र नहीं था पर सिन्धी लोग देश के अलग-अलग हिस्से में फैले हुए थे और देश की संस्कृति में इनका विशेष योगदान भी था। लेकिन आठवीं सूची में आ जाने के बाद सिन्धी लोगों ने सिन्धी के लिए कुछ विशेष नहीं किया। इसलिए खाली आठवीं सूची में आ जाने से कुछ खास हासिल नहीं होता सिवाय एक मानसिक तसल्ली के।

डी.पी. पट्टनायक साहिब ने ठीक ही कहा है कि भारत की हर क्षेत्रीय भाषा को इस सूची में ले लेना चाहिए। 1992 में कोंकणी, मणिपुरी व नेपाली भाषाएँ इस सूची में स्वीकृत हो गईं। दक्षिण-पूर्वी क्षेत्र की बात ही नहीं होती थी कभी भारत निर्माण प्रक्रिया में। मणिपुरी लोगों ने एक बहुत लम्बी लड़ाई लड़ी, मणिपुरी को इस सूची में लाने के लिए। पश्चिमी बंगाल ने नेपाली को 1961 में ही राजकीय भाषा का दर्जा दे दिया था। कोंकणी का सवाल तब उठा जब गोआ को महाराष्ट्र में मिलाने की बात सामने आई। कोंकणी को एक अलग भाषा माना गया और गोआ को एक अलग राज्य। इस प्रकार सूची में 18 भाषाएँ हो गईं। फिर कई साल तक कुछ नहीं हुआ। दिसम्बर

2003 में चार और भाषाएँ इस सूची में जोड़ दी गईं: बोडो, संथाली, मैथली व डोगरी और इसलिए आज सूची में कुल 22 भाषाएँ शामिल हैं। हर भाषा के जुड़ने के पीछे विशेष किस्म की राजनीति रही है। पर जो बातें सबमें शामिल थीं, वह हैं: मानसिक तसल्ली, सामाजिक प्रतिष्ठा एवं राष्ट्रीय पहचान।

भाषाओं को संविधान की इस सूची में लाने की बात अक्सर उन इलाकों से शुरू हुई जहाँ लोग सत्ता से खुश नहीं थे और जहाँ सामाजिक व राजनैतिक झगड़े चल रहे थे। बोडो जनजाति के लोग कई सालों से असम सरकार से नाखुश थे। वे असम में अपनी अलग पहचान बनाना चाहते थे। 2003 में बोडो लोगों, असम की सरकार और भारत की सरकार में एक समझौता हुआ। इसके अन्तर्गत बोडो भाषा को आठवीं सूची में शामिल किया गया। इसी प्रकार एक अन्य जनजाति भाषा संथाली को। भारत के अलग-अलग हिस्सों में रहने वाले संथाल व अन्य लोगों के बीच बातचीत की सामान्य भाषा संथाली पाँच अलग-अलग लिपियों में लिखी जाती है। मैथिली और डोगरी का इस सूची में शामिल होना तो और भी राजनैतिक था। भारत के सेंसस के दफ्तर ने जब सरकार को 1961 में यह बताया कि हिन्दी सीखने वालों की संख्या कम हो रही है तो कई जानी-मानी भाषाओं को जिनमें अवधि, भोजपुरी, मैथिली, ब्रज, बुन्देली आदि शामिल थीं, हिन्दी का ही हिस्सा मान लिया और हिन्दी बोलने वालों की संख्या बहुत बड़ी दिखने लगी। इस बात को लेकर बहुत हंगामा मचा। हिन्दी के आगमन से पहले बोली जाने वाली अवधि और ब्रज जैसी महान भाषाओं को हिन्दी की बोलियाँ कहा जाने लगा। मैथिली बोलने वालों ने बहुत संघर्ष किया, अपनी अलग पहचान बनाने का। यही बात डोगरी के बारे में भी सच है। कश्मीरी है तो डोगरी भी। यह तो साफ है कि आठवीं सूची में उन प्रतिष्ठित भाषाओं को रखा गया था जिनका ज़िक्र संविधान सभा की बहसों में हुआ था।

कुछ लोगों ने आदिवासियों की भाषाओं का सवाल भी उठाया था। लेकिन उस वक्त उनकी बात पर किसी ने गौर नहीं किया। सितम्बर 14, 1949 को संविधान सभा की भाषा को लेकर हो रही बहसों में बिहार के जसपाल सिंह ने मुण्डारी, गोंडी व उराओं को लेकर यह सवाल उठाया। उनका कहना था कि जहाँ संस्कृत जैसी भाषा बोलने वालों की संख्या केवल हज़ारों में होगी, वहाँ इन भाषाओं को लाखों लोग बोलते हैं। उनका यह भी कहना था कि जब ये लोग हमारी प्रान्तीय व राष्ट्रीय भाषाएँ सीखते रहते हैं तो हमें भी इनकी भाषाएँ सीखने का प्रयास करना चाहिए। उनका यह भी मानना था कि अपनी प्राचीन संस्कृति को समझने के लिए इन भाषाओं का अध्ययन आवश्यक है। लोग समझ रहे थे कि

शायद इस प्रक्रिया से देश में और कई छोटे-छोटे राज्य बन जाएँगे। पर जसपालजी ने समझाया कि ऐसा नहीं है। संथाली जैसी आदिवासी भाषा कई प्रदेशों में बोली जाती है जिनमें बंगाल, बिहार, असम व ओडिशा जैसे कई प्रदेश शामिल हैं। उन्हें संविधान में शामिल करने से वे स्वयं समृद्ध होगीं व राष्ट्रभाषा/राजभाषा को भी और अधिक समृद्ध करेंगी। खैर, यह सब उस वक्त तो नहीं हुआ पर बाद में कई तरह के संघर्ष करने पर बोडो व संथाली जैसी भाषाएँ आठवीं सूची में आईं।

अल्पसंख्यक समुदाय

जसपाल सिहं व अन्य कई सदस्यों की बातों को ध्यान में रखते हुए संविधान में कुछ और महत्वपूर्ण प्रावधान भी रखे गए। अनुच्छेद 29 (1) में यह प्रावधान रखा गया कि हर उस समुदाय को जिसकी अपनी भाषा, लिपि व संस्कृति हो, उन्हें यह अधिकार होगा कि वे उन्हें सुरक्षित रख सकें। अनुच्छेद 30 (1) में यह प्रावधान रखा गया कि हर भाषा या धर्म आधारित अल्पसंख्यक समुदाय को यह हक होगा कि वह अपने शैक्षिक संस्थान चला सके।

बहुसंख्यक समुदायों की अपनी सहमति से बनाई नीतियों में अल्पसंख्यक समुदायों को अक्सर बहुत नुकसान होता है। बहुसंख्यक लोग तो आपस में कुछ मानकर, कुछ मनवाकर समझौते कर लेते हैं पर इसमें अल्पसंख्यक समुदायों की बात अनसुनी रह जाती है। एक सही प्रजातंत्र केवल बहुमतों पर ही आधारित नहीं होना चाहिए। भारत के चार भाषा परिवारों में से हर परिवार की कुछ भाषाएँ रखी जा सकती थीं। यह तो सही है कि अधिक भाषाएँ आर्य व द्रविड़ परिवार की होती हैं पर मुण्डा व तिबतो बर्मन परिवारों की किसी भी भाषा को शामिल न करना शायद एक ज़्यादती थी।

रमाकान्त अग्निहोत्रीः दिल्ली विश्वविद्यालय से सेवा निवृत्त। व्यावहारिक भाषा-विज्ञान, शब्द संरचना, सामाजिक भाषा-विज्ञान और शोध प्रणाली पर विस्तृत रूप से पढ़ाया और लिखा है। 'नेशनल फोकस ग्रुप ऑन द टीचिंग ऑफ इंडियन लैंग्वेजिज़' के अध्यक्ष रहे हैं। आजकल विद्या भवन सोसायटी, उदयपुर में एमेरिटस प्रोफेसर हैं।

इन सभी लेखों का आधार संविधान के अध्याय 17 के अनुच्छेद हैं। इनका संसद से पारित कोई हिन्दी मानकीकृत रूप उपलब्ध नहीं है। इसलिए सरल हिन्दी में संविधान के इन अनुच्छेदों के बारे में बातचीत की गई है। जहाँ कहीं सम्भव हुआ, इंटरनेट से मदद ली गई है।

सन्दर्भः

- Seervai, H M (1983). Constitutional Law of India: A Critical Commentary. Bombay: Tripathi
- Shiva Rao, B et al (1968). The Framing of India's Constitution: A Study. Delhi: The Indian Institute of Public Administration